ब्रह्माण्ड में ओ३म् का स्वरूप

डॉ. रामदेव साहू
एसोसिएट प्रोफेसर
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

ओ३म् या प्रणव ही ब्रह्म है। ब्रह्म का वाचकत्व ओंकार में ही निहित है। यह आद्य उच्चारण है जो परा वाणी के रूप में प्रथम बार सृष्टिरचना के साथ उच्चरित होता है। परब्रह्म की वाणी के रूप में स्वीकार किये जाने के कारण ओंकार ही वाक् का आदिस्रोत है। यह ब्रह्म के निर्विशेष स्वरूप को घोषित करता है। अत: यह उपास्य भी कहा गया है।

ओंकार की तीन मात्राएँ हैं। ओंकार की प्रथम मात्रा ऋग्वेदस्वरूपा है। उसका पृथ्वीलोक से सम्बन्ध है। ओंकार की दूसरी मात्रा यजुर्वेदस्वरूपा है तथा इसका अन्तरिक्ष लोक से सम्बन्ध है। ओंकार की तीसरी मात्रा सामवेद है तथा इसका द्युलोक से सम्बन्ध है। त्रिमात्रिक (प्लुत) ओंकार में सम्पूर्ण वेदराशि (त्रयी)समाहित है।

बीज, बिन्दु, नाद एवं शक्ति इन चार रूपों वाला अकार ओंकार की पहली मात्रा है। यह अकार ही वैश्वानर है, क्योंकि यह अकार ही स्थूलसूक्ष्म कारण एवं साक्षी इन चार रूपों में परिलक्षित होता है। जैसे वैश्वानर जाग्रदवस्था वाले जगत् में व्यापक है, वैसे ही अकार भी वाणी में व्यापक है, अत: कहा गया है– 'अकारो वै सर्वा वाक्'।

पूर्वोक्त चार रूपों वाला उकार ओंकार की द्वितीय मात्रा है। यह उकार ही तैजस है। इसे ही हिरण्यगर्भ भी कहा गया है। यह उकार भी स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं साक्षी चार रूपों में परिलक्षित होता है। जैस तैजस् स्वप्नावस्था वाले जगत् में व्यापक है। वैसे ही उकार भी वाणी में व्यापक है। यह पहली मात्रा अकार की अपेक्षा उत्कृष्ट (ऊपर उठा हुआ) है।

मकार ओंकार की तृतीय मात्रा है। यह मकार ही प्राज्ञ है। यह भी ओतृ, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा तथा अविकल्प नामक चार रूप वाला है। यह भी स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं साक्षी चार रूपों से परिलक्षित होता है। प्राज्ञ सुषुप्त्यवस्था वाले जगत् में व्यापक है, इसी प्रकार मकार भी वाणी में व्यापक है। वैश्वानर एवं तैजस् का प्राज्ञ में लय हो जाता है। वैसे ही 'अ' एवं 'उ' का म् में लय हो जाता है।

अकार का उकार में लय हो जाता है, उकार उसकी प्रतिमात्रा है। मकार उकार की प्रतिमात्रा है तथा मकार की प्रतिमात्रा प्रणव है। प्रणव (ऊँ) ही सृष्टि के रूप में बृंहण को प्राप्त होने से ब्रह्म कहलाता है। इसके भी चाररूप हैं :–ओ ओतृ, अनुज्ञातृ, अनुज्ञा तथा अविकल्प ।

प्रणव की जो पहली मात्रा अकार है, वही पृथ्वी है, वही ऋक् है, वही ब्रह्म (प्रजापति) है, वही वसुगण है, वही गायत्री है तथा वही गार्हपत्याग्नि है। विराट पुरुष वैश्वानर रूप आत्मा से इसमें समाहित है ,यह ब्रह्म का प्रथम पाद है।।

प्रणव की जो दूसरी मात्रा उकार है, वही अन्तरिक्ष है, वही यजुष् है, वही विष्णु नारायण है, वही रुद्रगण है, वही त्रिष्टुप् है तथा वही दक्षिणाग्नि है। विराट् पुरुष तैजस् (हिरण्यगर्भ) रूप से इसमें समाहित है। यह ब्रह्म का द्वितीय पाद है

प्रणव की जो तीसरी मात्रा मकार है, वही द्यु (स्वर्ग) है, वही साम है, वही रुद्र शिव है, वही आदित्यगण है, वही जगती है तथा वही आहवनीयाग्नि है। विराट् पुरुष प्राज्ञ ईश्वररूप से इसमें समाहित है। यह ब्रह्म का तृतीय पाद है।

प्रणव के अन्त में अर्धमात्रा भी है, जिसे बिन्दु या विधानबिन्दु भी कहा गया है। यही परमेष्ठी (सोम) है। यही अथर्व है। यही संवर्तक(शेष) है, यही मरुद्गण है, यही विराट् छन्द है, यही अंगिरस (ऋताग्नि) है। विराट् पुरुषस्वभाव (परब्रह्म) से इसमें समाहित है। यह ब्रह्म का चतुर्थ (तुरीय) पाद है।

व्याष्टि एवं समष्टि ब्रह्म प्रणव (ऊँ) के ही अंग हैं। एक ब्रह्म प्रणव के ही तीन भेद माने जाते हैं– संहार प्रणव, सृष्टि प्रणव एवं उभयात्मक प्रणव। समष्टि प्रणव ही व्यावहारिक प्रणव कहलाता है तथा व्यष्टि प्रणव ही ब्रह्म प्रणव कहलाता है। उभयात्मक प्रणव को विराट् प्रणव के नाम से भी कहते हैं।

अर्ध मात्रा, अकार तथा उकार जिसके अंग हैं, ऐसा मकार मात्रा प्रधान प्रणव संहार प्रणव कहलाता है। उकार मकार तथा अर्धमात्रा को अङ्ग बना कर अकार मात्रा की प्रधानता वाला प्रणव सृष्टि प्रणव कहलाता है। सृष्टि प्रणव ही व्यावहारिक प्रणव है, क्योंकि वैखरी वाणी द्वारा एक मात्र यही उच्चारण योग्य कहा गया है

उभयात्मक या विराट् प्रणव चार मात्राओं वाला होता है। इसमें संहार प्रणव की तीन मात्राएँ तथा सृष्टि प्रणव की एक मात्रा मिला कर चार मात्राएँ मानी गयी हैं।

आर्च प्रणव सात मात्राओं वाला है। इसकी अकार, उकार, मकार, बिंदु, नाद, कला एवं कलातीत ये सात मात्राएँ मानी गयी हैं।

स्थूल सूक्ष्म कारण एवं साक्षी इन चार मात्राओं वाला अर्धमात्रा प्रणव भी प्रणव के भेदों में गिना गया है।

ब्रह्म प्रणव सोलह मात्राओं वाला होता है। इसमें संहार प्रणव की तीन मात्राएँ, सृष्टि प्रणव की एक मात्रा, अन्त: प्रणव की आठ मात्राएँ तथा ब्रह्म प्रणव की चार मात्राएँ मिला कर सोलह मात्राएँ मानी गयी हैं।

सोलह मात्राओं वाला ब्रह्म प्रणव ही ओतृ अनुज्ञातृ अनुज्ञा एवं विकल्प संज्ञक मात्राभेदों से चौसठ मात्राओं वाला हो जाता है। उनकी भी प्रकृति एवं पुरुष के भेद से दो-दो भेद होने के कारण एक सौ अट्ठाईस मात्राएँ हो जाती है।

लोक में चराचर जीवों का आधार पृथ्वी है। पृथ्वी का आधार जल है। जल का आधार वनस्पति है। वनस्पति का आधार प्राणी है। प्राणी का आधार प्राण है। प्राण का आधार वाक् है। वाक् का आधार ऋक् है। ऋक् का आधार साम है तथा साम का आधार ओंकार है। यह ओंकार ही सम्पूर्ण लोकों का आधार है।

ओंकार ही उद्गीथ भी कहा गया है। 'उत्' प्राण है। प्राणी प्राण से ही उत्थान प्राप्त करता है, अत: (उत्) उत्थान का वाचक है। 'गी' वाणी का द्योतक है। 'गी' का अर्थ है गमन करने वाली। वायु के साथ गमन करने वाली होने से वाणी का वाचक 'गी' पद है। 'थ' अन्न का वाचक है। सम्पूर्ण जगत् अन्नके आधार पर ही स्थित है। ओंकार ही प्राण, वाक् एवं मनस् का अधिष्ठान है।

सूर्य इस ओंकार का ही उच्चारण करता हुआ गति करता है। अत: कहा गया है 'स्वरम् एतीति सूर्य:'। प्राण भी ओंकार का ही उच्चारण करता हुआ गति करता है। वाक् ही ऋक् है तथा प्राण ही साम है। साम ऋक् में

प्रतिष्ठित है। प्राण वाक् में प्रतिष्ठित है। ऋक् में प्रतिष्ठित साम का ही गान किया जाता है। वाक् में प्रतिष्ठित प्राण का ही अनुभव (स्पन्द से) किया जाता है।

साम का जो भाग उद्गाता गाता है, उसे उद्गीथ कहते हैं। सामगान में सम्पूर्ण ओंकार का ही गान किया जाता है, अत: ओंकार उद्गीथ कहा जाता है।

साम का जो भाग प्रस्तोता गाता है, उसे प्रस्ताव कहते हैं। इसी प्रकार साम का जो भाग प्रतिहर्ता गाता है उसे प्रतिहार कहते हैं।

ओंकार के प्रस्ताव से सभी प्राण उत्पन्न होते हैं। ओंकार के उद्गान से सभी उर्क् (ऊर्जाएँ) उत्पन्न होती हैं। ओंकार के प्रतिहार से सभी अन्न उत्पन्न होते हैं।

जब प्रस्तोता, उद्गाता एवं प्रतिहर्ता तीनों मिल कर ओंकार का गान करते हैं तथा गान में 'हिं' पद का उच्चारण भी किया जाता है, तो उसे हिंकार कहते हैं। यह प्रजापति के निमित्त होता है। प्रजापति वाक् का अधिष्ठाता है तथा निरुक्त ब्रह्म है। इसके माध्यम से उसकी शक्तियों का चतुर्दिक प्रसार किया जाता है। यह हिंकार ही निधान भी है ,क्योंकि इसके बाद कुछ भी करणीय अथवा प्रापणीय शेष नहीं रह जाता। ओंकार में इसे चन्द्रबिन्दु के द्वारा दर्शाया गया है।

ओंकार में अकार प्रस्ताव है,उकार उद्गीथ है, मकार प्रतिहार है तथा चन्द्रबिन्दु हिंकार अथवा निधन है। इसके कारण प्रत्येक पदार्थ में क्रिया से सम्बद्ध चार प्रकार की आन्तरिक क्रियाएँ होती हैं– क्रिया का आरम्भ, क्रिया की गति, क्रिया का फल एवं क्रिया की समाप्ति। सामवेदीय विज्ञानविदों ने सप्तविध साम की स्थिति स्वीकार की है। ये सप्तविध साम क्रमश: हिंकार प्रस्ताव आदि उद्गीथ प्रतिहार उपद्रव एवं निधन संज्ञाओं से अभिहित हुए हैं। इनका तात्पर्य निम्न प्रकार समझना चाहिए–

- हिंकार पदार्थ की अपनी उत्पत्ति के पूर्व की अवस्था
- प्रस्ताव पदार्थ की उत्पत्तिकालिक अवस्था
- आदि पदार्थ की पूर्ण विकसित स्वरूप ग्रहण करनेकी अवस्था
- उद्गीथ पदार्थ में वृद्धि आदि परिवर्तन की अवस्था

- प्रतिहार पदार्थ की समृद्धावस्था
- उपद्रव पदार्थ की क्षयोन्मुखावस्था
- निधन पदार्थकी संक्षयावस्था अथवा विनाशावस्था

ओंकार एवं ब्रह्माण्ड (पञ्चविध साम)

- ओंकार की जो प्रथम हिंकारावस्था है, वह ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान त्रयी (ऋ ,यजुष्, साम) को उपलक्षित करती है। यह बीजावस्था है।
- ओंकार की जो द्वितीयावस्था प्रस्ताव है, वह त्रैलोक्य (भू, भुवः, स्वः) की उत्पत्ति को लक्षित करती है। यह स्वरूपावस्था है।
- ओंकार की जो तृतीयावस्था उद्गीथ है, वह त्रिदेवों (अग्नि, वायु एवं आदित्य) की उत्पत्ति को लक्षित करती है। यह आधारावस्था है।
- ओंकार की जो चतुर्थावस्था प्रतिहार है, वह ग्रहों की एवं आदित्यादि नश्त्रों की उत्पत्ति को लक्षित करती है। यह आधेयावस्था है।
- ओंकार की जो पंचमावस्था निधन है, वह पृथिवी एवं पार्थिव पदार्थों की उत्पत्ति को लक्षित करती है। यह अन्तिमावस्था या चरमावस्था है।

अश्वत्थ

नैरन्तर्येण गति, वृद्धि एवं समृद्धि के कारक सनातन तत्त्व को 'अश्वत्थ' शब्द से कहा गया है। अश्वत्थ के दो रूप हैं. ब्रह्म अश्वत्थ एवं कर्म अश्वत्थ। ब्रह्म अश्वत्थ शरीरापेक्षी होता है, जिससे जीव का आविर्भाव होता है। कर्म अश्वत्थ क्रियापेक्षी होता है, जिससे कर्म का उदय होता है। जीव ब्रह्म अश्वत्थ के कारण जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्धते, अपक्षीयते, विनश्यति, इन षड्भाव विकारों को प्राप्त करता है तथा कर्म अश्वत्थ के कारण जीव अपनी इन्द्रियों से उनके विषयों में सक्रियता प्राप्त करता है। ये दोनों अश्वत्थ ओंकार में युगपत् समाहित होते हैं, अतःसम्पूर्ण सृष्टिचक्र का मूलाधार ओंकार ही है।